चमगादड़ों के बहाने से

प्रियंवद

मेरे नए घर की बालकनी के ठीक सामने गूलर का एक पुराना और बड़ा पेड़ है । यह घर मेरे पुश्तैनी घर के बिल्कुल पास और उसी मुहल्ले में है, जिस घर में जन्म लेकर 65 वर्ष की उमर तक मैं रहा था । बचपन के निठल्ले और आवारा दिनों में जब यूँ ही घूमता था, तब भी यह पेड़ था, इस हिसाब से जोड़ें तो पेड़ की उमर 80 साल से ज्यादा की ही थी ।

यह पेड़ एक बड़े सरकारी विभाग की ज़मीन पर है । इस विभाग की इमारत के साथ ही जुड़े, पुराने बंद पड़े बरफ़खाने की बड़ी ज़मीन, एक बिल्डर ने खरीदी । उस पर कुछ फ्लैट्स बना दिए । बरफ़खाने के अंदर भी इतने ही पुराने नीम और पीपल के पेड़ थे । फ्लैट्स बनाने के दौरान उसने ये सब काट दिए । इनके कटने के बाद उस पूरे इलाके में एक भी पेड़ नहीं दिखता था, सिवाय इस गूलर के । यह इसलिए बचा रहा क्योंकि यह सरकारी विभाग की जमीन पर था और यही इसके भविष्य में बचे रहने की गारण्टी भी थी । अब चारों ओर उठी पत्थरों की ऊँची ऊँची उन इमारतों के बीच, जो आसमान, ताज़ी हवा और चाँद, तारों की दुनिया भकोस चुकी हैं, यही एक अकेला पेड़ दिखता है ।

मेरा तीन मंज़िला पुश्तैनी मकान अस्सी साल पुराना हो गया था । धीरे-धीरे जर्जर हो रहा था। उसमें सीलन, अंधेरा रहता था । समय के साथ तीन मंज़िल संकरी सीढ़ियाँ चढ़ना उतरना कठिन होता जा रहा था । मेरे लिए उसे छोड़ना एक ज़रूरत और मजबूरी बन गया था । मैंने उसी इलाके में एक घर की तलाश शुरू की । इसी सिलसिले में जब मैंने बिल्डिंग में उस पेड़ से मिली बालकनी को देखा, तो मैंने वही फ्लैट ले लिया । इतना ही नहीं, पेड़ के ठीक सामने वाले कमरे को ही अपना कमरा भी बनाया । अब मुझे कमरे और बालकनी से पेड़ हमेशा दिखता रहता है । इस तरह वह हर वक्त मेरे साथ है, गोया मेरे जीवन का हिस्सा हो ।

गूलर के इस पेड़ पर कई परिन्दों का बसेरा था । इनमें तोते सबसे ज्यादा थे । कबूतर, बुलबुल और गौरय्या भी थीं। गिलहरी घंटों आवाज देती थी । कई

बार कुछ दिनों के लिए नए, अनजान परिन्दे भी आ जाते थे । नीलकंठ, बुलबुल, छोटी, काली चिड़िया या फिर सफेद कबूतर भी आते थे । होली के आसपास कोयल भी इस पर बैठ कर कूकती थी । कई बार यह खूबसूरत और दिलकश इत्तफ़ाक़ भी हुआ कि सुबह पेड़ पर कोयल कूक रही है और रेडियो पर जयश्री गा रही है 'अमुवा की डारी पे बोले रे कोयलिया, प्रीत न करना कोई प्रीत न करना' या फिर शमशाद बेगम 'काहे कोयल बाग़ों में गाए रे, मुझे अपना कोई याद आए रे।' यह ग़ैबी दिखता इत्तफ़ाक़ ज़िंदगी के बेहद खूबसूरत पलों में एक होता था। अद्भुत होता था । सच तो यह है ऐसे पल बहुत कम होते हैं जब अंदर का हरेक रेशा, हर कण एक लय में नर्तन करता है । किसी रचना के सृजन में, किसी के दुख को कम करके, प्रकृति के असीम वैभव में ऐसा पल जागता है । तब लगता है इस लय पर हम भी नर्तन करें, उसी तरह, जैसे नीत्शे नाचता था, रामकृष्ण परमहंस नाचते थे, मीरा नाचती थी, सूफ़ी नाचते हैं या चौराहे पर कोई पागल सा दिखता इंसान नाचता है । उनके ये पल वरदान होते हैं । मेरे ये पल जब भी होते, इसी पेड़ की वजह से होते थे ।

फिर कोविड के डरावने दिन आए । लगभग दो साल तक चले इन आंतकी दिनों में चारों ओर लम्बा एकान्त और ठहरा हुआ सन्नाटा होता था । इन्सानों के ये सबसे बुरे और परिन्दों के सबसे खुशहाल दिन थे, इसलिए कि उनकी ज़िन्दगी से इंसानी दुनिया लगभग गायब हो गयी थी । डरे हुए लोग खिड़कियों से झाँकते तक नहीं थे। धुँआ, शोर, गंदगी, धूल, गंदी हवा और हर समय चीखती सैकड़ों आवाज़ें भी खत्म हो गयी थीं । ऐसी दुनिया में परिन्दे खुश थे । इनके साथ पेड़ भी खुश था । मस्ती में झूमता दिखता था । ज्यादा गदराया और घना हो गया था । इन दिनों में पेड़ पर परिन्दों की गिनती भी तेजी से बढ़ी थी । उन्होंने कई नयी धुनें ईजाद कर ली थीं । जब तब मस्ती में इन्हें गाया करते थे । उन्होंने बहुत सी

नयी दोस्तियाँ, नयी मुहब्बतें कर डाली थीं । उनके साथ-साथ ये मेरे भी खुशहाली के दिन थे । एकान्त, सन्नाटा, परिन्दे, पेड़ और आसपास दूर तक किसी इंसान का न होना एक नया अनुभव था । आकाश पर तारे ज्यादा घने, ज्यादा चमकदार दिखने लगे थे ।, जापानी कहावत की तरह, कि 'चावल की पोटली फट गयी है और वे आकाश पर बिखर गए हैं।' आकाश भी इतना नीला पहले कभी नहीं था । इतना नीला आकाश शमशेर ने भी नहीं देखा होगा । हेमिंग्वे के बूढ़े ने समुद्र में नहीं देखा होगा । यह प्यार के मकड़े के काटने के बाद खाल पर बने नीलेपन में नहीं था, किसी लड़की की नीली आँखों में नहीं था । इस नीलेपन से एक पवित्रता टपकती थी, जो दिखती नहीं थी, पर हर शै को ढक लेती थी । यह कमरों की खिड़कियों की चौखटों, टूटी कब्रों और अनन्त क्षितिजों को लाँघने वाले शब्दों पर थी । चाँद की बुढ़िया इतना साफ दिखती थी कि उससे बातें की जा सकती थीं । इन दिनों की सुबह भी ज्यादा चमकदार थी । आकाश से धरती के बीच की हर गंदगी गायब हो चुकी थी । सूरज निकलता तो उसके सातों घोड़ों की हिनहिनाहट सुनायी देती थी । पेड़ों के तनों का हर रेशा चमकता था ।

इन दिनों में पेड़ के साथ ज्यादा रहने के कारण मैंने परिन्दों की ज़िन्दगी को बहुत नज़दीक से देखा । उनके बारे में कुछ ज्यादा जाना । देखा कि वे कैसे प्रेम करते हैं, कैसे घर बनाते हैं, कैसे किसी शत्रु, जैसे कि बंदर या बड़ी चील के आने पर एकजुट हो कर चीखते हैं । उसका विरोध करते हैं । उसके सर के ऊपर मँडराते हुए चोंच मारने का अभिनय करते हैं। यह सब तब तक करते हैं, जब तक कि वह चला ना जाए ।

फिर कोविड का आतंक खत्म हो गया । इंसानों की दुनिया पूरी ताकत से वापस लौट आयी । उसी के साथ उनकी वहशत, शोर, गंदी, दम घोटने वाली गैसें, सब लौट आया । इनके लौटते ही पेड़ पर परिन्दे भी कम हो गए । कुछ तो दिखना ही बंद हो गए । तब भी, तोते बड़ी संख्या में बने रहे । शायद इसीलिए कि वे बरसों से उसी पेड़ पर रहते थे । यह उनका पुराना घर था । यहाँ वे बरसों से अपनी ज़िन्दगी, अपने सुख-दुख, अपनी इच्छाओं, सपनों, उड़ानों और आजादी के साथ रहते आए थे।

0 0 0

एक दोपहर मैने देखा कुछ आदमी गूलर पर चढ़ कर उसकी लम्बी, घनी शाखें काट रहे थे । बिल्डिंग की सोसायटी का सेक्रेटरी नीचे खड़ा उन्हें निर्देश दे रहा था । उसके चेहरे पर पथराया उजड्डपन आवाज़ में अतुल धन से जन्म लेने वाली गर्वीली जहालत थी । पता करने पर मालूम हुआ कि पेड़ के सूखे पत्ते, कमजोर टहनियाँ और टपके हुए गूलर नीचे बने फव्वारे में गिरते हैं । इससे गंदगी तो होती ही है, फव्वारे के अंदर आने या जाने वाली पानी की नालियाँ भी बंद हो जाती हैं । रात को पानी चलाने पर फव्वारों के अंदर नहीं जाता । फव्वारे के अंदर गंदगी, बदबू और मच्छर भी बढ़ जाते हैं ।

हस्बेमामूल, उस दिन भी तोते खाने की तलाश में झुँड बना कर सुबह निकल गए थे । जब पेड़ की शाखें काटी जा रही थीं, किसी भी तरह का विरोध नहीं था । शोर भी नहीं था । तोते होते तो मुमकिन था, शत्रु आने पर जैसा करते थे, पेड़ काटे जाने पर भी ऐसा ही करते । पेड़ काटने वालों के सरों पर मंडराते हुए, चीख कर अपना गुस्सा और विरोध प्रकट करते । उनके बेरहम कुल्हाड़ों से अपना घर बचाने की कोशिश करते । वे नहीं थे तो आदमियों ने पेड़ को इत्मीनान और आसानी से बहुत ज्यादा छाँट दिया था ।

मुझसे यह देखा नहीं गया । घर से निकल कर मैं देर तक गंगा किनारे बैठा रहा । गंगा पूरी तरह बदबू और कीचड़ से भरी थी । रास्ते में गोरा कब्रिस्तान के अंदर कुछ देर तीन सौ साल पुरानी कब्रों के साथ बैठा रहा । पूरा कब्रिस्तान घने, बड़े पेड़ों, पत्थरों के बीच और उनके नीचे दबी ज़िंदगियों के बारे में बताने वाले मृत्यु लेखों से भरा था। उनको पढ़ता रहा। जब दिन बीत गया, मैं घर लौटा । बालकनी में आया । मैंने देखा पेड़ की वे ही शाखें काटी गयी थीं जो फव्वारे के ऊपर थीं । पेड़ सरकारी जमीन पर था । इसलिए इससे ज्यादा वे इसे काट भी नहीं सकते थे, अलबत्ता उनके वश में होता और मौका मिलता, पूरा पेड़ काटने में वे वहशी एक पल के लिए भी नहीं सोचते । मैंने खुद को यही तसल्ली दी कि चलो, कुछ शाखें ही कटी हैं । बहुत जल्दी और बहुत तेजी से फिर बढ़ जाएंगी । किसी को पता भी नहीं चलेगा, ऐसा कब हो गया। पेड़ फिर पहले की तरह गदराया और घना हो जाएगा ।

तोते जब शाम को लौटे तो लौटने के बाद मुझे उनका पहले जैसा शोर नहीं सुनायी दिया । मैंने बालकनी में आ

कर देखा । खामोशी से वे पेड़ को देख रहे थे । कभी गरदन घुमा कर चारों ओर देखते, कभी नीचे गिरे पत्तों और डालों को । शायद वे अपना घर पहचान रहे थे । अपनी दुनिया, उसके सुख-दुख तलाश रहे थे । कुछ देर में अंधेरा होने लगा ।

सुबह मैंने देखा पेड़ पर तोते बहुत कम रह गए थे । ये वे ही थे जिन्होंने ज़िद, बेचारगी या मुहब्बत में पेड़ को नहीं छोड़ा था । जैसे देश बटवारे के समय, दंगों के बाद, युद्ध और विकास की गहरी, जाहिल दौड़ में बरबाद, उजड़े लोगों में कुछ अपनी जगह तब भी नहीं छोड़ते। ज्यादातर तोते पेड़ छोड़कर चले गए थे ।

0 0 0

फिर एक शाम मैंने रात शुरू होने के पहले वाले हल्के अंधेरे में पेड़ से आती कुछ नयी और कर्कश आवाजें सुनीं । बालकनी पर आ कर देखा तो एकबारगी दहशत से भर गया । कुछ बहुत बड़े चमगादड़ पेड़ पर आ कर उल्टा लटक रहे थे । हालाँकि चमगादड़ गूलर के पेड़ पर नहीं आते। इसके अलावा चमगादड़ों की बहुत बड़ी संख्या रोज़ ही बीबीघर, और उसके चारों ओर खड़े मुक्तिबोधी घने बरगदों की जटाओं से उड़ कर आसमान को पार करती हुयी, मोटी चर्बी वाले कीड़ों या बीजों को खाने के लिए गंगा पार खेतों की ओर जाती थी। पर न जाने क्यों झुंड छोड़कर कुछ चमगादड़ इस पेड़ पर आकर लटक रहे थे । वैसे भी, चमगादड़ तो अँधेरा शुरू होते ही अपने ठिकानों से बाहर निकलते हैं और अंधेरा खत्म होने से पहले लौट आते हैं, पर ये अंधेरे में आकर लटक रहे थे । समझ नहीं आया ऐसा क्यों कर रहे थे? शायद गूलर की गंध हो या फिर कुछ कीड़ों के होने की सरसराहट हो ।

जो था, जब वे चमगादड़ पेड़ पर लटक रहे थे, मुझे पेड़ पर बचे हुए तोतों के विरोध की, क्रोध की, चीखने की कोई आवाज़ नहीं सुनायी दी । बल्कि जो पेड़ पर रह गए थे, वे तोते भी नहीं दिखे । शायद चमगादड़ों को देखकर वे इतना डर गए थे कि चुपचाप अपना बरसों पुराना घर छोड़ कर किसी ओर निकल गए थे ।

0 0 0

अब मुझे बालकनी से पेड़ पर उल्टे लटके चमगादड़ दिखते हैं । मैं देख रहा हूँ उनकी संख्या बढ़ रही है । मैं जानता हूँ एक दिन ये पूरे पेड़ पर कब्ज़ा कर लेंगे । उसकी हर शाख को अपने मजबूत पंजों में दबा कर उल्टा लटक जाएंगे । उनकी कर्कश आवाज, बदबू देती बीट और पंखों से टपकते मोटी चर्बी वाले कीड़े बढ़ जाएंगे । मैं यह सच भी जानता हूँ कि धरती का कोई पक्षी बुरा नहीं होता । चमगादड़ भी हजारों सालों से मनुष्यों के साथ रह रहे हैं। मनुष्यों को उनसे बहुत से लाभ भी मिलते हैं। मैं नहीं जानता क्यों इन्हें शैतान, प्रेत, खून चूसने वाले जानवर के रूप में बताया जाता है । कैसे इनकी यह छवि बनी और पूरी दूनिया में फैल गयी । शायद इसलिए कि देखने में निहायत बदसूरत, घिनौने और खूँखार दिखते, इन चमगादड़ों की अलग अलग नस्लें, अलग-अलग चीजों पर ज़िन्दा रहती हैं । कुछ कीड़ों पर, कुछ फलों पर और कुछ सचमुच खून चूस कर । ये स्तनधारी जानवरों का खून धीरे-धीरे चूसते हैं । खून चूसने के लिए कई बार ये इन्सानों और घोड़ों पर भी हमला कर देते हैं । इसीलिए इन्हें खून चूसने वाले, प्रेत, शैतान के रूप में देखा गया है । इनके इस तरह खून चूसने की आदत के कारण ही ब्रैम स्टोकर ने 1897 में 'ड्रैकूला' उपन्यास लिखा, जिसका दुष्ट नायक दुनिया के किसी भी उपन्यास के चरित्र के बराबर ही लोकप्रिय है। अच्छी तरह जाना जाता है । इस पर फिल्मों की कई श्रृखलाएं भी बनी हैं । यह चमगादड़ एक ऐसा शैतान है जो रात के अंधेरे में निकलता है और जिसका खून चूसता है, उसे अपने जैसा बना देता है । कई वर्षों तक प्रसिद्ध अभिनेता हेनरी इरविंग के बिसिनेस मैनेजर की तरह काम करने वाले स्टोकर ने इसी तरह भेड़ियों में बदल जाने वाले इंसानों पर भी लिखा है । दिलचस्प है कि उसके इस काल्पनिक 'वैम्पायर' से ही अंग्रेजी में खलनायिका के लिए 'वैम्प' शब्द शुरू हुआ । वैम्प यानी एक ऐसी निष्ठुर स्त्री जो पुरुष को नैतिक पतन की ओर खींचती रहती है ।

जो है, सामने के गूलर के पेड़ पर इनके आने के बाद, इनके बारे में सुने सुनाए किस्सों को कुछ देर के लिए मानें, जो सच हों या झूठ, जैसे भी हैं, तो उनके अनुसार इन पंखों से डर और आंतक का टपकना भी बढ़ जाएगा । किसी दिन इनके इर्द गिर्द खंडहरों जैसी मनहूसियत और वीरानी बचेगी । पेड़ भी इनके पंजों से जल्दी नहीं छूटेगा । छोटी लोमड़ी जैसे चेहरे वाले ये जानवर अन्धेरे, हवाओं और आतंक की पहचान हैं। इनके साथी हैं । बड़े कानों वाले इन जानवरों का खून नींद में ठंडा हो जाता है । ये दिल की धड़कन 180 प्रति मिनट से 3 प्रति मिनट तक कर सकते हैं। 15 सालों तक जिन्दा

रहने वाले ये महीनों इसी तरह उल्टा लटके रह सकते हैं । यह सब और ज्यादा डरावना लगता है, अगर इन गंदी शक्ल वाले जानवरों को अपना खून चूसने की कल्पना करें ।

यह सब देख कर मुझे इंसानी दुनिया का एक बड़ा और क्रूर सच भी समझ में आ गया है, कि कैसे पूरी दुनिया में डरावने और बर्बर लोग (जो चमगादड़ नहीं होते, पर उनकी यही छवि है।) अचानक हर चीज़ पर कब्जा कर लेते हैं । यह भी, कि कैसे अचानक किए गए ऐसे कब्ज़े, हजारों निरीह, मासूम इंसानों के घर और ज़िन्दगी उजाड़ने के बाद हासिल होते हैं, कैसे अचानक संगीत के स्वरों पर कर्कश आवाजें छा जाती हैं । कैसे स्वतन्त्रता, उड़ान, प्रेम और निर्मलता के इन्द्रधनुषों को रौंद दिया जाता है । यह भी समझ में आ गया है कि देशों के लिखे गए इतिहासों में, पूरी दुनिया के इंसानी समाजों का सच इस पेड़, तोतों और चमगादड़ों से अलग नहीं है। शायद मुक्तिबोध की कविता 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की ये पंक्तियाँ इन चमगादड़ों, ऐसे इंसानों और ऐसे जगत का सबसे अच्छा और उचित परिचय हैं । पढ़ें इस कविता का यह अंश ।

टेढ़े-मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी भी खूब है
मकान मकान घुस लोहे के गज़ों की जाली
के झरोखों को पार कर
लिपे हुए कमरे में
जेल के कपड़े -सी फैली है चाँदनी,
दूर-दूर काली-काली
धारियों के बड़े-बड़े चौखट्टों के मोटे-मोटे
कपड़े -सी फैली है
लेटी है जालीदार झरोखे से आयी हुई
जेल सुझाती हुई ऐयारी रोशनी ।।
अँधियाले ताल पर
काले घिने पंखों के बार-बार
चक्करों के मँडराते विस्तार
घिना चिमगादड़ - दल भटकता है चारों ओर
मानो अहं के अवरुद्ध
अपावन अशुद्ध घेरे में घिरे हुए
नपुंसक पंखों की छटपटाती रफ़्तार
घिना चिमगादड़-दल
भटकता है प्यासा -सा
बुद्धि की आँखों में
स्वार्थों के शीशे-सा ।।

आभार : *अकार -69 (प्रियंवद की संपादकीय- अकथ से)*